प्रयोजन का अर्थ

जॉन डिवी

जॉन डिवी की गणना उन शिक्षा दार्शनिकों में होती है जिन्होंने शिक्षा प्रक्रियाओं के नियोजन पर बल दिया है। ऐसा नियोजन जो शैक्षिक गतिविधियों में 'क्या करना है' के साथ ही परिणामों को पूर्वानुमानित करे। वे बताते हैं कि किसी गतिविधि के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उद्देश्यों की स्पष्ट समझ हो, प्रत्येक चरण पर आवश्यकताएं एवं संभावित परिणामों की पूर्ण दृष्टि हो।

शिक्षक या शिक्षा कर्म से जुड़े व्यक्तियों के लिए जरूरी हो जाता है कि वे सुविचारित निर्णय करें। साथ ही जॉन डिवी बताते हैं कि शिक्षा प्रक्रियाओं में बच्चों को भी भागीदार बनाया जाना चाहिए क्योंकि योजना सहयोग से निर्मित होने वाला विचार है। यह लेख जॉन डिवी की 1938 में प्रकाशित पुस्तक 'एक्सपीरियन्स एण्ड एज्युकेशन' से लिया गया है।

लेखक परिचय :

जॉन डिवी (1859-1952) जाने-माने अमेरिकी शिक्षा दार्शनिक। प्रगतिशील शिक्षा व्यवस्था के अगुवा चिन्तक रहे हैं और आज भी इनके दुनियाभर के शिक्षा चिन्तन पर गहरा प्रभाव है।

पुस्तक :

'डेमोक्रेसी एण्ड एज्युकेशन', 'द स्कूल एण्ड सोसायटी', 'द चाइल्ड एण्ड करिक्युलम', 'हाऊ वी थिंक', 'एक्सपिरियेंस एण्ड नेचर' और 'माई पैडागॉजिक क्रीड'।

भाषान्तर :

सुरेन्द्र कुशवाहा

तब तो यह एक उत्तम नैसर्गिक प्रवृत्ति है जो आजादी और ताकत के आधार पर प्रयोजनों को गढ़ती है और इस तरह गढ़े गए प्रयोजनों को कार्यान्वित एवं क्रियान्वित करती है। इस प्रकार की स्वतंत्रता एक मायने में आत्म-नियंत्रण के समरूप होती है; क्योंकि प्रयोजनों का बनना और उन्हें कार्यान्वित करने के साधन जुटाना बुद्धि और समझ का काम है। प्लेटो ने दास को एक बार ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया था जो दूसरों के प्रयोजनों को कार्यान्वित करता है और जैसा कि अभी कहा गया है, वह व्यक्ति भी दास होता है जो अपनी अन्ध इच्छाओं का दास हो जाता। मुझे लगता है ऐसी प्रगतिशील शिक्षा के दर्शन में कोई सार नहीं है जो प्रयोजनों की निर्मिति में सीखने वालों की भागीदारी के महत्त्व को तरजीह नहीं देती; प्रयोजन जो सीखने की प्रक्रिया में सीखने वाले की गतिविधियों को निर्देशित करते हैं। उसी तरह जैसे पारंपरिक शिक्षा में इससे बड़ा कोई दोष नहीं है कि वह अध्ययन में निहित प्रयोजनों के निर्माण में शिक्षार्थी के सक्रिय सहयोग को सुनिश्चित करने में असफल रहती है। किन्तु प्रयोजनों और लक्ष्यों का अर्थ स्वतः प्रमाणित एवं स्वतः स्पष्ट नहीं है। जितना अधिक शैक्षिक महत्त्व पर जोर दिया जाता है, उतना ही अधिक महत्त्वपूर्ण यह समझना भी हो जाता है कि प्रयोजन से तात्पर्य क्या है; यह कैसे उत्पन्न होता है और अनुभव की इसमें भूमिका क्या है ?

एक सच्चा प्रयोजन हमेशा एक संवेग से आरंभ होता है। संवेग के तुरन्त कार्यान्वयन में बाधा इसे इच्छा में परिवर्तित कर देती है। इसके बावजूद न तो संवेग और न ही इच्छा अपने आप में एक प्रयोजन होता है। प्रयोजन तो एक अन्तिम छोर (झांकी) होती है। अर्थात् इसमें परिणामों की पूर्वदृष्टि (पूर्वानुमान) शामिल होती है, जो संवेग पर अमल करने से उत्पन्न होते हैं। परिणामों के पूर्वानुमान में बुद्धि को काम में लेना होता है। सर्वप्रथम, वस्तुनिष्ठ स्थितियों और परिस्थितियों का अवलोकन जरूरी होता है। क्योंकि संवेग और इच्छा केवल अपने द्वारा परिणामों को जन्म नहीं

देती बल्कि उनके द्वारा परिवेशीय परिस्थितियों के साथ अन्तःक्रिया और सहयोग से ऐसा होता है। टहलना जैसी साधारण क्रिया के संवेग को तभी कार्यान्वित किया जा सकता है जब आपका जमीन से, जिस पर आप खड़े हैं, सक्रिय तालमेल होता है। साधारण परिस्थितियों में हमें जमीन पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत नहीं होती है। नाजुक परिस्थिति में हमें बहुत ध्यान से देखना होता है कि विद्यमान परिस्थितियां क्या हैं; उदाहरण के लिए, जब हमें सीधे खड़े ऊंचे और विकट पहाड़ पर चढ़ना होता है जहां पर चढ़ने के लिए पहले से कोई पगडण्डी नहीं बनी होती है। तब अवलोकन करने की मशक्कत करना एक ऐसी शर्त होती है जो संवेग को प्रयोजन में रूपान्तारित कर देती है। जैसा कि तब होता है जब हम रेलवे क्रॉसिंग का चिन्ह देखते हैं, उस समय हम रुकते हैं, देखते हैं और सुनते हैं।

लेकिन मात्र अवलोकन से काम नहीं चलता। हमें समझना होता है कि जो हम देखते हैं; सुनते हैं या छूते हैं; उसका महत्त्व क्या है; कितना जरूरी है। जब हम अवलोकन करते हैं और फलस्वरूप कार्य करते हैं तो उसके जो परिणाम होते हैं, वे इस महत्त्व को निर्मित करते हैं।

एक बच्चा एक लौ की चमक को देखता है और आकर्षित होता है और उस तक पहुंचने का प्रयास कर सकता है। ऐसी स्थिति में लौ की महत्ता उसकी चमक में नहीं है बल्कि उसकी जला देने की ताकत में है। यह परिणाम लौ के छूने पर आएगा। अपने पूर्व अनुभवों के द्वारा ही हम परिणामों के बारे में जान सकते हैं। ऐसे मामलों में जिनसे हम बहुत से पूर्व अनुभवों के कारण परिचित होते हैं; हमें ठहर कर यह सोचने की जरूरत नहीं होती कि वे अनुभव क्या थे। एक लौ प्रकाश और गर्मी की सूचक होती है और इसके लिए हमें गर्मी और जलने के अपने पूर्व अनुभवों को याद नहीं करना पड़ता। लेकिन अपरिचित परिस्थितियों में हम नहीं बता सकते कि जिन स्थितियों का हमने अवलोकन किया है, उनके परिणाम क्या होंगे जब तक कि हम अपने मस्तिष्क में पुराने अनुभवों को दोहरा न लें, जब तक कि हम उन पर पुनर्चिन्तन न कर लें और देख लें कि विद्यमान परिस्थितियों में समान क्या है, जब तक कि हम इस निर्णय पर न पहुंच जाएं कि वर्तमान परिस्थिति में अपेक्षित क्या हो सकता है।

इस प्रकार प्रयोजनों की निर्मिति एक बड़ी जटिल बौद्धिक प्रक्रिया है। इसमें (1) परिवेशीय परिस्थितियों का अवलोकन शामिल होता है; (2) इस बात की जानकारी कि पूर्व में समान परिस्थितियों में क्या घटित हुआ है - यह जानकारी आंशिक रूप में घटनाओं के पुनर्स्मरण से प्राप्त हो सकती है और आंशिक रूप से सूचनाओं, परामर्श और चेतावनी के रूप में विस्तृत अनुभव रखने वाले लोगों से प्राप्त की जा सकती है; (3) निर्णय जो अवलोकित तथ्यों और प्राप्त जानकारी को उनके अभिप्रायों के आधार पर एकत्रित कर व्यवस्थित करता है। प्रयोजन मौलिक संवेग और इच्छा से भिन्न होता है। यह एक योजना और कार्य के तरीके में परिवर्तित हो जाता है, जो परिणामों के पूर्वानुमान पर आधारित होते हैं, जो अवलोकित परिस्थितियों में एक निश्चित तरीके से काम करते हुए प्राप्त होते हैं। 'यदि इच्छाएं घोड़ा होतीं तो उन पर भिखारी भी सवारी करते।' किसी चीज के लिए इच्छा तीव्र भी हो सकती है। यह इच्छा इतनी बलवती भी हो सकती है कि इच्छापूर्ति करने से उत्पन्न परिणामों के अनुमान की अवहेलना कर दी जाए। ऐसी घटनाएं शिक्षा के लिए प्रतिदर्श (मॉडल) उपस्थित नहीं करतीं।

अवलोकन और निर्णय के हस्तक्षेप करने तक इच्छापूर्ति की त्वरित कार्यवाही को स्थगित रखना एक निर्णायक शैक्षिक समस्या है। जब तक कि मैं गलती पर नहीं हूं, यह बात प्रगतिशील स्कूलों के संचालन के लिए निश्चित रूप से प्रासंगिक है। लक्ष्य के रूप में गतिविधि पर अत्यधिक जोर - न कि सुविचारित गतिविधि पर - जो संवेगों और इच्छाओं के त्वरित कार्यान्वयन की स्वतंत्रता की ओर संकेत करते हैं। संवेग और प्रयोजन के बीच घालमेल के द्वारा इस सांकेतिक स्वतंत्रता को उचित ठहराया जाता है यद्यपि, जैसा कि अभी कह चुके हैं, प्रयोजन तब तक नहीं होता जब तक कि उसके लिए किए जाने वाले कार्य की तैयारी को तब तक मुल्तवी न रखें जब तक कि संवेग के कार्यान्वयन के परिणामों के पूर्वानुमान उपलब्ध हों - पूर्वानुमान जो बिना अवलोकन, सूचना और निर्णय के असंभव है। मात्र पूर्वानुमान चाहे वह कितना भी सही आंका गया हो कि ऐसा होगा, पर्याप्त नहीं होगा। बौद्धिक पूर्वाभास, परिणामों के बारे में विचार की इच्छा या संवेग के साथ मेल खाना प्रेरक शाक्ति प्राप्त करने के लिए अनिवार्य है। तब यह अंधेरे में एक दिशा प्रदान करता है जबकि इच्छा विचारों को प्रोत्साहित करती है, ऊर्जावान और गतिशील बनाती है। मान लीजिए एक व्यक्ति नया घर बनाना चाहता है। एक नए भवन का निर्माण करना चाहता है। उसकी यह इच्छा कितनी भी बलवती क्यों न हो, यह ऐसे ही बिना सोच-विचार के तैयार नहीं हो सकता। उसे पहले विचार करना होगा कि किस प्रकार का मकान चाहता है - कितने कमरे बनेंगे और कौन कमरा किसके लिए कहां बनेगा इत्यादि। उसे एक योजना बनानी होगी, नक्शे तैयार करने होंगे, नाप-जोख, सामग्री जो लगेगी उसका ब्यौरा तैयार करना होगा। यदि उसने अपने संसाधनों के बारे में नहीं सोचा है तो यह उसके खाली समय गुजारने का एक निकम्मा शौक बनकर रह जाएगा। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए उसके पास जो पूंजी है या ऋण उपलब्ध है, उसका योजना से मिलान करके देखना होगा कि पर्याप्त है या नहीं। उसे मकान के

लिए उपलब्ध स्थानों की जांच करनी होगी - कीमत क्या है, उसके कार्यस्थल से कितना करीब है, पड़ोस अनुकूल है या नहीं, स्कूली सुविधाएं उपलब्ध हैं या नहीं इत्यादि-इत्यादि। सब चीजों को मिलाकर देंखे तो उसकी खर्च करने की क्षमता, परिवार का आकार और जरूरतें, स्थान की उपलब्धता की संभावनाएं इत्यादि-इत्यादि, ये सब वस्तुनिष्ठ तथ्य हैं। ये मौलिक इच्छा के अंग नहीं हैं। लेकिन इन सब पर विचार करना और निर्णय लेना जरूरी है ताकि इच्छा को प्रयोजन में तब्दील किया जा सके और प्रयोजन को एक कार्य योजना में।

हम सभी की इच्छाएं होती हैं, उन सभी की जो अभी इतने विकृत नहीं हुए हैं कि पूरी तरह से विरक्त हो गए हों। ये इच्छाएं कर्म के प्रेरणास्पद चरम जोत हैं। एक पेशेवर व्यापारी अपने पेशे में सफल होना चाहता है, एक जनरल युद्ध में जीतना चाहता है, एक अभिभावक अपने परिवार के लिए आरामदेह घर चाहता है और अपने बच्चों को पढ़ाना चाहता है और इसी तरह अनगिनत लोगों की अपनी इच्छाएं होती हैं। इच्छा जितनी भावप्रवण होंगी, किए जाने वाले प्रयास भी उतने ही ताकतवर होंगे। लेकिन इच्छाएं हवाई किले ही रहती हैं जब तक कि उन्हें ऐसे उपायों में परिणत नहीं कर दिया जाता जिनके द्वारा इन्हें पूरा किया जा सके। प्रश्न है कि यह कितना जल्द संभव है या कि उपायों का तानाबाना कब अंतिम काल्पनिक छोर तक बनकर तैयार होगा - तब जबकि उपाय या साधन वस्तुनिष्ठ होते हैं - एक प्रमाणिक प्रयोजन की निर्मिति के लिए इन सबका अध्ययन कर इन्हें समझने की जरूरत है।

पारंपरिक शिक्षा की प्रवृत्ति वैयक्तिक संवेग और इच्छा के महत्त्व को प्रेरक स्रोत के रूप में देखने की नहीं रही है। लेकिन कोई कारण नहीं कि इसलिए प्रगतिशील शिक्षा संवेग और इच्छा को प्रयोजन के रूप में समझे और सतर्क अवलोकन की आवश्यकता को, विस्तृत जानकारियों को और निर्णय को सरल रूप में ले, यदि शिक्षार्थियों को प्रयोजनों की निर्मिति में भागीदार होना है जो उन्हें सक्रिय बनाते हैं। शैक्षिक योजना में इच्छा और संवेग का होना अन्तिम लक्ष्य नहीं है। यह एक अवसर है और गतिविधि के तरीके और योजना तैयार करने के लिए जरूरी है। इस प्रकार की योजना, एक बार फिर कहें तो, केवल परिस्थितियों के अध्ययन द्वारा और सब प्रासंगिक जानकारी इकट्ठा करने के बाद ही बनाई जा सकती है।

शिक्षक का काम है कि वह इस मौके का फायदा उठाए। चूंकि बुद्धिमतापूर्ण अवलोकन और निर्णय की प्रक्रिया में स्वतंत्रता प्राप्त रहती है, जिसके द्वारा प्रयोजन को विकसित किया जाता है, शिक्षार्थी के बौद्धिक अभ्यास में शिक्षक द्वारा प्रदत्त मार्ग दर्शन स्वतंत्रता के प्रति मददगार होता है, न कि उस पर कोई प्रतिबन्ध। कभी-कभी शिक्षक समूह के सदस्यों को सुझाव देने में भी कि उन्हें क्या करना चाहिए, डरे हुए से दिखते हैं। मैंने ऐसे कई वाकए सुने हैं जहां बच्चे चीजों और सामग्री से घिरे हुए थे और तब उन्हें पूरी तरह से अपने हाल पर छोड़ दिया गया था, शिक्षक यह सुझाव देने का भी अनिच्छुक था कि उन चीजों का क्या किया जा सकता है। इसमें स्वतंत्रता के अतिक्रमण की तो बात ही नहीं थी। तब क्यों ये चीजें बच्चों को दी गई थीं ? चीजें देने का अर्थ ही है कि उनका क्या करना है, उस पर कुछ सुझाव होंगे। लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि सुझाव जिन पर बच्चों को काम करना है कहीं न कहीं से तो आने ही चाहिएं। यह समझना असंभव है कि क्या किसी ऐसे ही व्यक्ति का सुझाव भी जिसके पास विस्तृत अनुभव और दृष्टि है कम से कम उतना ही मान्य नहीं होना चाहिए जितना कि वह सुझाव जो कमोबेश किसी अकस्मात् स्रोत से प्राप्त होता है।

पद का दुरुपयोग करना और बच्चों की गतिविधियों को जबरन उन विचार-वाहिकाओं में डाल देना, जो शिक्षक के प्रयोजन को अभिव्यक्त करती हैं बजाए शिक्षार्थियों के, निस्संदेह संभव है। परन्तु इस खतरे से बचने के लिए वयस्क द्वारा पूर्णरूप से अपने को अलग नहीं कर लेना है। तरीका तो यह है कि शिक्षक पहले शिक्षणरत व्यक्तियों की क्षमताओं, आवश्यकताओं और पूर्व अनुभवों की सम्यक समझ बना ले, फिर जो सुझाव आया है उसे समूह के सदस्यों के अन्य सुझावों की मदद से जिन्हें समूह ने एक पूर्ण इकाई के रूप में व्यवस्थित किया है एक योजना और परियोजना में विकसित कर लें। योजना, अन्य शब्दों में, एक सहयोगात्मक कार्य है न कि आज्ञापालन। शिक्षक का सुझाव कोई लोहे का सांचे में ढला परिणाम नहीं है बल्कि एक आरंभिक बिन्दु है जिसे सीखने की प्रक्रिया में लगे सभी के अनुभवों के योगदान से एक योजना में विकसित किया जाना है। विकास परस्पर आदान-प्रदान से होता है। अत्यावश्यक बात यह है कि प्रयोजन सामाजिक बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा विकसित होता और आकार ग्रहण करता है। ◆

भूल सुधार

शिक्षा विमर्श के वर्ष 10/अंक 4/जुलाई-अगस्त, 2008 में लतिका गुप्ता के लेख 'तू हिन्दू बनेगा या मुस्लमान बनेगा ?' के अनुवादक का नाम देना भूलवश छूट गया था। इस लेख के अनुवादक रविकांत हैं।

संपादक